International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(6): 174-176

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(6): 174-176
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 25-09-2018
Accepted: 29-10-2018

Dr. Shubh Kumar
Head, Deparment of Sanskrit, GDC, Kathua, Jammu and Kashmir, India

Correspondence
Dr. Shubh Kumar
Head, Deparment of Sanskrit, GDC, Kathua, Jammu and Kashmir, India

भारतीय वास्तुशास्त्र का शास्त्रीय स्वरूप, उद्भव एवं विकास

Dr. Shubh Kumar

सारांश
प्रत्येक ज्ञान, विज्ञान, शास्त्र, विद्या आदि की उत्पत्ति वेदों से हुई है। उसी प्रकार वास्तुशास्त्र की भी उत्पत्ति वेदों से हुई है। ऋग्वेद संहिता में गृह शब्द निवास या घर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार गृह के धामन्, सदन, आयतन, वस्त्य, शाला आदि पर्यायवाची शब्द मिलते हैं। वेद में वास्तु के वैदिक देवता का नाम 'वास्तोष्पति' मिलता है। मत्स्यपुराण में स्थापत्य अर्थात् वास्तुशास्त्र का क्रमानुसार वर्णन मिलता है यथा– वास्तु पुरुष की उत्पत्ति, एकाशीति पद, भूमि परीक्षा आदि। अग्नि पुराण में भी वास्तु के 16 अध्याय हैं। विश्वकर्म प्रकाश में आचार्य विश्वकर्मा ने भूमि चयन से गृह प्रवेश तक का वर्णन किया है तथा गृह को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का प्रदाता कहा है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत एवं नाट्य शास्त्र में भी वास्तु का प्रचुर उल्लेख मिलता है।

कूटशब्द: भारतीय वास्तुशास्त्र, ज्ञान, विज्ञान, शास्त्र, विद्या, मत्स्यपुराण

प्रस्तावना
संस्कृत साहित्य में वेदों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वेद ज्ञान और विज्ञान के भण्डार हैं। वेदों में विविध विद्याओं का बीज रूप में अथवा विस्तृत रूप में वर्णन मिलता है। पूर्व ऋषियों, मुनियों तथा शिक्षाविदों ने वेदों के रहस्य का उद्घाटन करने के लिए उपवेदों, वेदांगों, उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों, ब्राह्मणग्रन्थों एवं आरण्यक ग्रन्थों आदि की रचना की। वेदों का अनुशीलन सहज रूप में करनें के लिए शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेदांग महनीय स्थान रखते हैं जैसा कि महाभाष्यकार भी लिखते हैं–

ब्राह्मणस्य निष्कारणो धर्मः षडंगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।।[1]

वेदांगों में ज्योतिष को वेद पुरुष का चक्षु कहा गया है।[2] अतः स्पष्ट है कि जैसे हम नेत्रों के द्वारा बाह्य जगत की चीजें देखते हैं उसी तरह ज्योतिष के द्वारा भूत, भविष्य और वर्तमान कालीन परिस्थितियों का आकलन किया जाता है। ज्योतिष कालविधान शास्त्र है। मानव कल्याण हेतु वेद प्रतिपादित श्रौत, स्मार्त, यज्ञ अनुष्ठानों के सम्पादन हेतु शुभ मुहूर्त का निर्देश करता है। यथा–

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः, कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं, यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्।।[3]

ज्योतिष शास्त्र की सिद्धान्त, संहिता और होरा ये तीन प्रमुख शाखाएँ हैं। जो आज समयानुसार विकसित होकर विविध शाखाएँ बन गई हैं जैसे सामुद्रिक शास्त्र, स्वरशास्त्र, मुहूर्तशास्त्र, शकुनशास्त्र, ताजिक और वास्तुशास्त्र आदि।

वास्तु तथा वास्तुशास्त्र की परिभाषा
वास्तु शब्द की उत्पत्ति 'वस्–निवासे धातु से 'तुण्' प्रत्यय के योग से हुई है। जिसका अर्थ है 'वसति अस्मिन् इति वास्तु' अर्थात् जहाँ प्राणी वास करते हैं उस स्थान को वास्तु कहते हैं। इस नियम के अनुसार जलचर, थलचर और नभचर प्राणी जिस–जिस स्थान पर रहते हैं, उनके लिए वही स्थान 'वास्तु' है। अमरकोष में घर के लिए चयनित भूमि को वास्तु कहा गया है।[4] ऋग्वेद में 'वास्तु' शब्द का भवन अथवा गृह के लिए प्रयुक्त किया गया है।[5] मत्स्यपुराण में सभी देवताओं का निवास होने के कारण वास्तु कहा गया है यथा– "निवासात्सर्वदेवानां वास्तुरित्याभिधीयते"।[6]

कौटिल्य[7] ने अपने अर्थशास्त्र में 'वास्तु' शब्द की विस्तृत व्याख्या करते हुए लिखा है कि गृह के क्षेत्र, वाटिका, बन्ध, सेतु, सभी प्रकार के भवन, सरोवर आदि सभी वास्तु कहलाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सभी प्रकार के गृह, भवन, दुर्ग, राजमहल, देवालय, नगर, ग्राम, मार्ग, वापी, तालाब, विपणि आदि जहाँ भी प्राणी रहते हैं और कार्य करते हैं वे सभी स्थल 'वास्तु' की संज्ञा से पुकारे जाते हैं। जिस शास्त्र में मनुष्य के रहने अथवा कार्य करने योग्य भूमि पर गृह, भवन, दुर्ग, मन्दिर, तालाब आदि के निर्माण के नियमों, सिद्धान्तों तथा प्रविधियों का उल्लेख किया जाता है, उसे 'वास्तुशास्त्र' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

वास्तुशास्त्र का उद्भव एवं विकास

प्रत्येक ज्ञान, विज्ञान, शास्त्र, विद्या आदि की उत्पत्ति वेदों से हुई हुई है उसी प्रकार वास्तुशास्त्र की भी उत्पत्ति वेदों से हुई है। ऋग्वेद[8] संहिता में गृह शब्द निवास या घर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द अथर्ववेद[9] में भी आया है। गृह के लिए ऋग्वेद में गय्, धामन्, सदन, आयतन, वेश्म, ओकस, निवेशन, वस्त्य, शाला भवन आदि अनेक पर्यायवाची शब्द मिलते हैं। ऋग्वेद में वास्तु के वैदिक देवता का नाम 'वास्तोष्पति' लिखा है, जिसका अर्थ है घर का स्वामी। ऋग्वेद संहिता में रक्षा की भावना से अनेक मन्त्रों द्वारा उनसे प्रार्थना की है। जैसा कि ऋषि कहता है–

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्य स्मान्स्वावेशो अनमीवो भवानः।
यत्वे महे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।[10]

इस मन्त्र में 'वास्तोष्पति' से द्विपदों और चतुष्पदों की रक्षा तथा सुख–सौभाग्य आदि की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है। इस विवेचन से वास्तुशास्त्र का वैदिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व सिद्ध होता है।

वैदिक संहिताओं की भाँति ब्राह्मण एवं सूत्र ग्रन्थों में विविध वास्तुशास्त्रीय तथ्य उपलब्ध होते हैं। वैदिक वाङमय के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उस समय वास्तु का स्वरुप मुख्यतः यज्ञशाला, कुण्ड निर्माण, मण्डप निर्माण, वेदीनिर्माण, पर्णकुटी, गोशाला आदि का निर्माण हुआ था परन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि उस समय विशाल गृहों का निर्माण नही होता था। शतपथ ब्राह्मण[11] में गृह के विविध कक्षों एवं द्वारों का रोचक वर्णन मिलता है। अथर्ववेद[12] में साधारण पर्णकुटी से लेकर विशाल भवन तक प्रत्येक प्रकार के गृह का वर्णन मिलता है। इसमें द्विपक्षा, चतुष्पक्षा, षट्पक्षा आदि शालाओं का उल्लेख हुआ है। अथर्ववेद का उपवेद अर्थात् स्थापत्य वेद ही कालान्तर में वास्तुशास्त्र के रूप में परिणत हुआ तथा इसका पूर्ण विकास पुराणकाल में हुआ।

वस्तुतः वैदिककाल में अंकुरित वास्तुशास्त्र का पूर्ण विकसित रूप आगम तथा पुराणों में दृष्टि गोचर होता हैं। पुराण का अर्थ है प्राचीन। पुराणों मे वर्णित वास्तुविद्या तत्कालीन समाज की समृद्धता एवं वैभवता की उत्कृष्टता को प्रदर्शित करती है। सभी पुराणों में अधिकांश पुराण स्थापत्य विज्ञान का विवेचन करते हैं। वे सुन्दर राजमहल एवं उन्नत गृह–निर्माण की उच्च कला के साथ एतद् विषयक ज्ञान की महत्ता सिद्ध करते हैं। इनमें नगर, ग्राम, भवन, राजमहल, देवालय, शयनकक्ष, आयुध गृह का निर्माण तथा अनेक प्रतिमाओं का निर्माण उत्कृष्टता से मिलता वर्णित मिलता है।

वास्तुशास्त्र के संदर्भ विविध पुराणों में देखने को मिलते हैं जैसा कि– मत्स्यपुराण में स्थापत्य अर्थात वास्तुशास्त्र का क्रमानुसार उल्लेख मिलता है। यथा– वास्तुपुरुष की उत्पत्ति[13], एकाशीति पद वास्तु निर्णय में भूमि परीक्षा, पददेवता विन्यास[14] का वर्णन है। गृहमान नामक अध्याय में सर्वतोभद्र, नन्द्यावर्त, वर्द्धमान आदि भवनों का वर्णन हुआ है।[15] इस पुराण में रुचक, वज्र, द्विवज्र, प्रलीनक तथा वृत्त नामक पांच प्रकार के विशाल स्तम्भों का वर्णन हुआ है। प्रासाद[16] निर्देश तथा मण्डप[17] लक्षणादि नामक अध्याय में मन्दिर–स्थापत्य की विस्तृत जानकारी है, जिनमें उनकी योजना, परिमाण, तलें, गुम्बद तथा छतों आदि की चर्चा है।

अग्निपुराण में वास्तुशास्त्र में सम्बन्धित सोलह अध्याय हैं। इन अध्यायों में वास्तु विद्या के साथ मूर्ति रचना का भी वर्णन है। नगर निवेश[18] के अन्तर्गत नगर का विस्तार उसका प्रशस्त आकार नगर के महत्त्वपूर्ण अंग–प्रकार एवं द्वार आदि का उल्लेख है। जिनमें विविध वर्णों का तथा विविध व्यवसाय जीवियों के निवास का वर्णन है। स्कन्दपुराण के तीन अध्यायों में, वास्तुशास्त्र का उल्लेख है। जिनमें नगर संरचना[19] का विस्तृत वर्णन, स्वर्णिम प्रधान कक्षों, रथों तथा कल्याण मण्डपों का वर्णन मिलता है।

गरुडपुराण का भारतीय वास्तुशास्त्र में उत्कृष्ट स्थान है। इसमें वास्तु के सभी प्रमुख विषयों का प्रतिपादन हुआ है, जैसे राजमहल, दुर्ग, उद्यान, मन्दिर, मठ और त्रिविध भवनों में आवासीय, सैनिक तथा धार्मिक।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण तो स्थापत्य कला, मूर्तिकला और चित्रकला का कोषग्रन्थ है इसमें देव तथा मानव गृहों की रचना का अलग–अलग वर्णन मिलता है। इसमें छः प्रकार के दुर्गों, उनके चारों और बनाई जाने वाली परिखा, देवालय, राजमार्ग, अनेक वणिकों एवं व्यवसाय जीवियों के बाजार तथा भवनों का उल्लेख मिलता है।[20] इस प्रकार मत्स्य, अग्नि, स्कन्द, गरुड, विष्णुधर्मोत्तर, वराह, विष्णु, नारद और भविष्य पुराण आदि में वास्तुशास्त्र का विस्तृत वर्णन मिलता है।

गृह निर्माण की वास्तुशास्त्रीय परम्परा– गृह निर्माण के आरंभ का ज्ञान वैदिक, पौराणिक, वास्तुशास्त्रीय तथा लौकिक साहित्य के गंभीर अध्ययन से होता है। इस गृह निर्माण की परम्परा का श्रीगणेश उसी दिन हो गया था जब मनुष्य ने पर्णकुटी बना कर रहना आरंभ किया था। इसी युक्तिसंगत तथ्य को 'समरांगणसूत्रधार' ग्रन्थ में पौराणिक शैली में कहा है। कृत युग[21] में देव और मानव एक साथ सुखपूर्वक रहते थे। देवों के समान मानव भी पुण्यशील, अजर एवं अमर थे। उस युग में वे उन कल्पवृक्षों में रहते थे जिनका आकार राजमहल जैसा था। ये कल्पवृक्ष उनकी सभी कामनाओं की पूर्त्ति करते थे। वर्ष भर वसन्त ऋतु रहती थी। अत एवं कठोर एवं दृढ़ गृह की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। उस समय सामाजिक समता के साथ जीवन शान्तिपूर्ण था। शक्ति तथा प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष का कोई स्थान नहीं था।

परन्तु कालान्तर में मानवों में देवों के प्रति अवज्ञा उत्पन्न हुई, जिसके फल स्वरूप मानवों की पुण्यशीलता आदि का ह्रास हो गया। कल्पवृक्षों के नीचे उनके आहार–विहार, क्रीडा–प्रमोद आदि भी समाप्त हो गये। वे भूख–प्यास से पीड़ित होकर शस्यादि का आहार करने लगे। जिससे उनमें मल की प्रवृत्ति हो गई। उससे उनकी प्रकृति सत्व की जगह राजस हो गई तथा वे दैहिक, दैविक एवं भौतिक त्रिविध ताप से ग्रसित हो गए। समाज में समता के स्थान पर व्यक्तिवाद का अस्तित्व स्थापित हो गया। वसन्त ऋतु के साथ–साथ ग्रीष्म, वर्षा, शीत आदि भी होने लगीं। अतः वृक्षों की छाया अब सुरक्षित निवास स्थल नहीं रह गयी। ऐसी स्थिति में ग्रीष्म, वर्षा, शीत आदि से बचने के लिए गृह की आवश्यकता हुई। अत एव उन्होंने पत्थरों के औजारों से वृक्षों की शाखाओं को काटकर राज प्रासाद की आकृति के कल्पवृक्षों के स्वरूप को याद कर नए गृहों–भवनों की रचना आरंभ की।

आधुनिक चिन्तनधारा– 'गृह्णाति इति गृहम्' अर्थात् जो दूरस्थ प्राणी को अपनी ओर आकर्षित करे उसे गृह या घर कहते हैं। आधुनिक चिन्तकों का कथन है, गृह प्राणी की मूल आवश्यकता है। सर्वप्रथम प्राणी भोजन या क्षुधा पूर्त्ति के उपरान्त गृह या आवास की खोज में लगा और खोज के फल स्वरूप प्राकृतिक गुफाएँ उपयोग में लाई गयीं, परन्तु उनमें अपने–आप को असुरक्षित जान कर कालान्तर में मानव सभ्यता तथा वास्तु कला के साथ विभिन्न साधनों का प्रसार हुआ। फल स्वरूप मानव ने पांच तत्त्वों के सुमेल

और वास्तुशास्त्र के नियमों व सिद्धान्तों के अनुसार गृह निर्माण करना आरंभ किया।

हमारे पूर्वजों ने गृह को सुखों को निवास माना है। घर स्त्री, पुत्र, मित्रादि के भोग एवं सौख्य का जनक है। धर्म, अर्थ एवं काम को देने वाला जीवों का निवास स्थान है। शीत, ग्रीष्म एवं वर्षा आदि दुःखों को दूर करने वाला है। वापी, कूप, जलाशय तथा देवालय के सम्पूर्ण पुण्यों को देने वाला है। अतः विश्वकर्मा आदि शिल्पियों ने सर्वप्रथम गृह निर्माण का निर्देश किया है।[22]

विश्वकर्मप्रकाश'[23] ग्रन्थानुसार वास्तुशास्त्र का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्मा से महीर्ष गर्ग ने प्राप्त किया। गर्ग से पराशर ने प्राप्त किया। पाराशर मुनि से बृहद्रथ ने प्राप्त किया और बृहद्रथ से आचार्य विश्वकर्मा ने प्राप्त किया। मत्स्यपुराण[24] में वास्तुशास्त्र के अठारह वास्तुविदों का उल्लेख मिलता है। यथा– भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, गर्ग, शौनक, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र और बृहस्पति इस प्रकार वास्तुशास्त्र के समय–समय पर विविध आचार्य हुए हैं। इन वास्तुविदों में आचार्य विश्वकर्मा और मय की सर्वाधिक प्रसिद्धि रही है। इनमें से विश्वकर्मा को देवों का स्थपति या देववास्तु का प्रवर्तक माना गया है।

मय को असुर वास्तु का प्रवर्तक माना गया है। देवों में जो ख्याति व प्रतिष्ठा विश्वकर्मा की थी, वही प्रतिष्ठा असुरों में मय की थी। भारत में वास्तु शास्त्र की दो धाराएँ हैं। पहली नागर अथवा उतर भारतीय वास्तु परम्परा और दूसरी द्राविड़ अथवा दक्षिण भारतीय परम्परा। नागर परम्परा के मूल आचार्य विश्वकर्मा हैं तथा ग्रन्थ विश्वकर्मप्रकाश आदि हैं। द्राविड परम्परा के उद्भावक एवं स्थापक आचार्य मय हैं इस परम्परा का मुख्य ग्रन्थ मयमत है। वाल्मीकि रामायण में विश्वकर्मा का लंकापुरी के सन्दर्भ में वास्तु कौशल का विस्तृत विवरण मिलता है उसी प्रकार महाभारत में मय के वास्तुकौशल की प्रशंसा की गई है।

वाल्मीकि रामायण, महाभारत एवं भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वास्तु विषयक प्रचुर उल्लेख मिलता है। प्राचीन वास्तु शास्त्रीय ग्रन्थ जिनमें वास्तु विषयक जानकारी भूमि चयन से लेकर गृह प्रवेश तक विस्तृत रूप से तथा प्रमाणिक रूप से मिलती है। इन ग्रन्थों ने वास्तु शास्त्र के अमूल्य ज्ञान को अक्षुण्ण बनाए रखा। ये ग्रन्थ इस प्रकार हैं– विश्वकर्मप्रकाश, बृहत्संहिता, मयमत, मानसार, समरांगणसूत्रधार, मानसोल्लास, अपराजितपृच्छा, जयपृच्छा, वास्तुसूत्रोपनिषद, प्रमाणमंजरी, वास्तुरत्नाकर, वास्तुराजवल्लभ, वास्तुमण्डन, शिल्परत्न आदि। इस प्रकार भारतीय वास्तुशास्त्र के उद्भव एवं विकास की लम्बी परम्परा वैदिक समय से वर्तमान समय तक अनवरत चल रही है। इस शास्त्र के विकास का ज्ञान हमे वेद, पुराण, प्राचीन साहित्य एवं वास्तु के मानक ग्रन्थों से होता है।[25]

सन्दर्भ

1. महाभाष्य, आह्निक – 1
2. "वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्योतिषं.... न किञ्चितकरः।। भास्काराचार्य, सिद्धान्तशिरोमणि।
3. वेदांग ज्योतिषम्, 3
4. "वेश्मभूर्वास्तुस्त्रियाम्"। अमरकोष, काण्ड–2, पुरवर्ग 19
5. "तां वा वास्तन्युशमसि...।। ऋग्वेद 1.154.6
6. मत्स्यपुराण
7. "गृहं क्षेत्रमारामः सेतुबन्धस्तटाकमाधारो वा वास्तुः।। अर्थशास्त्र अधिकरण 3, अध्याय 8
8. "सुरगं गृहं ते"। ऋग्वेद 3.53.6
9. ''गृहे वसतु'' अथर्ववेद, 10.6.4
10. ऋक्संहिता 7.54.1
11. शतपथ ब्राह्मण 3.5.1.11
12. या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते। अष्टपक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निगर्भ इवाशये।। अथर्ववेद 9.3.21
13. मत्स्यपुराण, अध्याय 252
14. मत्स्यपुराण, अध्याय 253
15. मत्स्यपुराण, अध्याय 254
16. मत्स्यपुराण, अध्याय 269
17. मत्स्यपुराण, अध्याय 270
18. मत्स्यपुराण, अध्याय 106
19. स्वयं विश्वकर्म द्वारा...। स्कन्दपुराण, माहेश्वर खण्ड, भाग–2, अध्याय 25
20. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, खण्ड–2, अध्याय 26
21. समरांगणसूत्रधार, अध्याय–6
22. बृहद् वास्तुमाला, श्लोक 4
    स्त्रीपुत्रमित्रादिक भोगसौख्य जननं... श्रीविश्वकर्म्मादयः।।4।।
23. इति प्रोक्तं वास्तुशास्त्रं पूर्वं गर्गाय... वातुशास्त्रकम्।। विश्वकर्मप्रकाश पृष्ठ संख्या 100
24. भृगुरत्रिः.... वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।। मत्स्यपुराण अध्याय 252, 2–4
25. शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीय स्थापत्य, पृष्ठ 25–26